तित्थयर

सत्रहवाँ वर्ष । जुलाई १९६३ । तृतीय अंक

जैन भवन

तित्थयर

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष १७ : अंक ३
जुलाई १९९३

□

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सो एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७

सूची

ऋषिभाषित सूत्र संबद्ध अर्हत्-ऋषियों की अवधारणा ६७
जैन नमस्कार मंत्र में अरिहंताणं पाठ पर विचार ७०
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ७७
संकलन ९३
जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या ९४

महावीर
नागराज मन्दिर, नागेरकोयेल

ऋषिभाषित सूत्र संबद्ध अर्हत्-ऋषियों की अवधारणा

साध्वी डॉ० सुरेखा श्री

'तुलसी प्रज्ञा' के ही जुलाई-सितम्बर १९९१, अंक २, पृ० ८३ पर 'क्या सामान्य केवली को अर्हन्त पद उपयुक्त है?' शीर्षक से संयुक्त लेख प्रकाशित किया था। तदन्तर्गत आगमिक संदर्भ युक्त निर्देश किया था कि सामान्य केवली को आगमों में कहीं भी अर्हन्त पद से विभूषित नहीं किया गया है। क्यों नहीं किया गया? इसका कारण यह हो सकता है कि तीर्थंकरों के 'जिन' नाम कर्म का उपार्जन होता है। फलस्वरूप चौदह स्वप्न दर्शन, पंच कल्याणक महोत्सव, समवसरण की रचना आदि अनेक रचनात्मक कार्य ऐसे हैं, जिनका सामान्य केवली में अभाव होता है। तीर्थङ्कर तथा केवली में साम्य ज्ञान-सीमा से है। कैवल्य की प्राप्ति, सर्वज्ञत्व का लाभ, अष्टविध कर्मों में से चार घाती कर्मों के क्षय हो जाने पर होता है। इन घाति चतुष्क के क्षय हो जाने पर निश्चत रूप से अघाति कर्मों का क्षय भी होने से तद्भवसिद्धि हो जाती है। घाति चतुष्क के क्षीण होने से कैवल्य ज्ञान की परिधि में तीर्थंकर व सामान्य केवली तुल्य होते हैं। कर्म क्षयापेक्षया साम्य होने से सामान्य केवली को भी अर्हन्त कहा जा सकता है। सामान्यतया व्यावहारिक अपेक्षा से कहा भी जाता है। किन्तु आगमों में ऐसा एक भी संदर्भ उपलब्ध नहीं होता, जहाँ सामान्य केवली को भी अर्हत् पद से अलंकृत किया गया हो। जिसको मैंने गत लेख में प्रस्तुत किया था।

इस लेख के आकलन-प्रकाशन के पश्चात् एक ऐसा आगम ग्रन्थ हाथ मे आया जिसमें अर्हत् पद की अवधारणा अनेरी है। ऋषिभाषित सूत्र (इसिभासियाइं) जैन आगम साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है। यद्यपि जैन सम्मत ४५ आगम ग्रन्थों में, दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में इसे मान्यता नहीं दी गई है। तथापि नंदी सूत्र एवं पाक्षिक सूत्र में उल्लिखित कालिक सूत्रों में इसकी गणना की गई है। प्रो० सागरमल जैन ने 'ऋषिभासित : एक अध्ययन' प्रस्तावना में इस ग्रन्थ के रचनाकाल की सीमा में पूर्व सीमा ई० पू० ५वीं शताब्दी और अंतिम सीमा ई० पू० ३री शती मानी है।[१] इसमें दो राय नहीं कि ऋषिभाषित सूत्र की भाषा से स्वयं ही

---

१ इसिभासियाइं सुत्ताइं : संपादक महामहोपाध्याय विनय सागर, प्रकाशक प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर तथा श्री जैन श्वे० नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर।

इसका इतिहास व प्राचीनता मुखरित होती है। इस ऋषिभाषित सूत्र में ४५ ऋषियों का उनके उपदेश के साथ उल्लेख किया है। जैन परम्परा के अनुसार इन ४५ ऋषियों में से २० प्रभु अरिष्टनेमि के काल के, १५ प्रभु पार्श्वनाथ के काल के तथा शेष १० प्रभु महावीर के काल के माने गये हैं। यही एकमात्र ग्रन्थ है जिसमें जैन परम्परा के अतिरिक्त बौद्ध एवं वैदिक परम्परा के ऋषियों एवं उनके उपदेशों का बखूबी से वर्णन किया है। तिस पर भी आश्चर्य तो इस बात का है कि इन सभी ऋषियों को अर्हत् पद से समलंकृत किया है।

जैन परम्परा में अर्हत् पद आगमों में तीर्थंकर के लिए, बौद्ध त्रिपिटकों में बुद्ध एवं श्रावकों के लिए तथा वैदिक साहित्य में अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं के लिए पूज्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। बौद्ध परम्परा जहाँ अर्हत् भूमिका में बुद्ध के साथ श्रावकों के लिए भी इसे प्रयुक्त करती है, वहाँ जैन परम्परा मात्र सर्वज्ञ-तीर्थंकर को ही इस पद से विभूषित करती है। यदि सामान्य केवली को भी इसमें सम्मिलित किया जाय तब भी इतना तो निश्चित ही है कि कैवल्य लाभ के अनन्तर ही अर्हत् पद से सन्मानित किया गया है। किन्तु यही एकमात्र ग्रन्थ है कि जिसमें सभी ऋषियों को अर्हत् संज्ञा दी गई है।

जैनागम होने पर भी ऋषिभाषित सूत्र में वर्णित सभी ऋषि जैन परम्परा से सम्बन्धित नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण, परिव्राजक आदि संज्ञाएँ जो इन ऋषियों से संलग्न है, वे उन्हें इतर परम्परा का होना सूचित करता है। वैसे भी नारद, असित देवल, अंगिरस भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, बाहुक, विदुर, वारिषेण कृष्ण, द्वैपायन, आरुणि, उद्दालक, तारायण आदि ऋषिगण वैदिक परम्परा में सुप्रसिद्ध हैं, जिनका उपदेश उपनिषद्, महाभारत, पुराण आदि धर्मग्रन्थों में सुरक्षित है। वैदिक परम्परा के अतिरिक्त वज्जीयपुत्र, महाकाश्यप, तथा सारिपुत्र का उल्लेख बौद्ध परम्परा के अन्तर्गत त्रिपिटक साहित्य में प्राप्त होता है। इधर मंखलिपुत्र, रामपुत्र, अंबड़, संजय (वेलट्ठि पुत्र) आदि का सम्बन्ध स्वतंत्र श्रमण परम्परा से है। तथा इनका उल्लेख जैन-बौद्ध दोनों ही परम्पराओं में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऋषि जैन परम्परा से ही सम्बन्धित है। सोम, यम, वरुण, और वायु तथा वैश्रमण इनको जैन, बौद्ध एवं वैदिक तीनों ही परम्पराएँ सामान्यतया लोकपाल के रूप में स्वीकारतीं हैं। कहीं कहीं ऋषि स्वरूप भी स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार इस ऋषिभाषित सूत्र में जैन, बौद्ध तथा वैदिक परम्परा से

सम्बन्धित ऋषियों का उल्लेख किया है, यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है। तीनों ही परम्पराओं से सम्बन्धित होने पर भी इसमें प्रत्येक ऋषि को अर्हत्-पद से आदृत किया है। परिव्राजक, ब्राह्मण तथा प्रत्येक बुद्ध होने पर भी अर्हत्-पद प्रयुक्ति सूत्र की असाधारण विशेषता है, चूँकि जैन परम्परा में केवलज्ञानी के साथ भी इस कड़ी को जोड़ा नहीं गया है। किन्तु इस सूत्रमें तो जो इस भव में केवल-लब्धि से संप्रयुक्त नहीं है, उनको भी यहाँ अर्हत् पद से सुशोभित किया गया है जो कि जैन परम्परा से भिन्नता लिए हुए है। भावी अर्हत् को जैन परम्परा भी मान्य करती है। यह रूप हमें इसी सूत्र के अंबड परिव्राजक नामक २५वें अध्ययन में दृष्टिगत होता है। अंबड को भावी तीर्थंकर मान्य करने पर भी उसे अर्हत् स्वरूप नहीं कहा गया। मात्र अंबड परिव्राजक रूप से उसका यहाँ उल्लेख किया है। ४५ ऋषियों में मात्र अंबड को अर्हत् पद से शोभित नहीं किया। जबकि माहण परिव्राजक ऋषिगिरि को यह प्रदान किया गया है। शाक्यपुत्र बुद्ध के साथ भी यही अर्हत् पद प्रयुक्त है।

उपर्युक्त विवरण पर दृष्टिपात् करने से यह तो सुनिश्चित हो जाता है कि यह ऋषिभाषित सूत्र एक अपवाद सूत्र अथवा इसे समन्वय सूत्र कहा जा सकता है। जिसमें यह निर्विवाद उल्लिखित है कि इसमें इतर परम्परा को भी समाविष्ट करके अर्हत् पद से उनको भी विभूषित किया है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ-जहाँ 'अरहत' पद प्रयुक्ति है, वहाँ-वहाँ 'अरहत' के साथ ऋषिपद भी संयुक्त है ही। अर्हत् तथा ऋषि दोनों ही को पूज्यभाव प्रगट करता हुआ यह ऋषिभाषित सूत्र है। जैनागमों में जहाँ सामान्य केवली के साथ भी इस पद से संयुक्त उल्लेख प्राप्त नहीं होता, वहाँ इस सूत्र में सर्वत्र प्रत्येक ऋषि के साथ अर्हत् पद प्रयोग इस सूत्र की अनूठी विशेषता है।

जैन नमस्कार मंत्र में अरिहंताणं पाठ पर विचार

श्री सत्यरंजन बन्द्योपाध्याय

जैनों ने आगम ग्रन्थ के प्रारम्भ में एवं समस्त कार्यों के आरम्भ में अपने सिद्ध पुरुषों को नमस्कार किया है। यह नमस्कार मंत्र ही जैन 'नमोक्कार' मंत्र रूप में प्रसिद्ध है। वह मंत्र है :

णमो अरिहंताणं।
णमो सिद्धाणं।
णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं।
णमो लोए सव्व साहूणं ।।
एसो पंच णमोक्कारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ।।

अर्थात्, अर्हतों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायों को नमस्कार और लोक के समस्त साधुओं को नमस्कार।

ये पाँच नमस्कार सब पापों का नाश करने वाले और सर्व मंगलों में प्रथम (श्रेष्ठ) मंगल कर्म हैं।

जैन नमस्कार मंत्र के पश्चात् और भी तीन मंत्रों का उच्चारण किया जाता है :

१. चत्तारि मंगलं—
अरिहंता मंगलं।
सिद्धा मंगलं।
साहू मंगलं।
केवलि पन्नत्तो धम्मो मंगलं ।।

२. चत्तारि लोगुत्तमा—
अरिहंता लोगुत्तमा।
सिद्धा लोगुत्तमा।
साहू लोगुत्तमा।
केवलि पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।।

३. चत्तारि सरणं—

अरिहंते सरणं पवज्जामि ।
सिद्धे सरणं पवज्जामि ।
साहु सरणं पवज्जामि ।
केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥

संसार में चार मंगल रूप हैं : अर्हन्त मंगल रूप, सिद्ध मंगल रूप, साधु मंगल रूप एवं केवली भगवंतों द्वारा कथित धर्म मंगल रूप है ।

संसार में चार उत्तम हैं : अर्हन्त लोकोत्तम, सिद्ध लोकोत्तम, साधु लोकोत्तम एवं केवली भगवंतों द्वारा कथित धर्म लोकोत्तम है ।

संसार में चार शरण हैं : मैं अरिहंतों की शरण ग्रहण करता हूँ, सिद्धो की शरण ग्रहण करता हूँ, साधुओं की शरण ग्रहण करता हूँ और केवली भगवंतों द्वारा कथित धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ ।

इस नमोक्कार मंत्र के पश्चात् यदि नित्य पूजा आरम्भ होती है तो और भी कई मंत्र पाठ किए जाते हैं । वे हिन्दू पूजा के मंत्रों के अनुरूप हैं । वे मंत्र है :

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितोदुस्थितोऽपिवा ।
ध्यायेत् पंच नमस्कारं सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥ १
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा ।
यः स्मरेत् परमात्मानं स वाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥ २
अपराजित मन्त्रोऽयं सर्वविघ्न विनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥ ३
एसो पंच नमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होई मंगलं ॥ ४
अर्हमिताक्षरं ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सदवीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥ ५
कर्माष्टक विनिर्मुक्तं मोक्ष लक्ष्मी निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥ ६
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी भूत पन्नगाः ।
विषं निर्विषता याति स्तूयमाने जिनेश्वरो ॥ ७

इस प्रसंग में जैन नमस्कार मंत्र के 'अरिहंताणं' पाठ के विषय में विचार करना अनुचित नहीं होगा । इस आलोचना का भी एक इतिहास है—

१९६३ में 'जैन सन्देश' नामक एक पत्र में प्रकाशित एक निबन्ध में स्व० अगरचन्दजी नाहटा ने 'णमो अरहन्ताणं' या 'अरिहन्ताणं' इस प्रश्न को उठाया था। संक्षेप में उनका वक्तव्य था :

जैन आगम ग्रन्थों में जो णमोक्कार मंत्र है उसमें अर्हतों को नमस्कार किया गया है। इस अर्हत् का प्राकृत में तीन रूप देखा जाता है : अरहंताणं, अरिहंताणं एवं अरुहंताणं। इन तीनों पाठों में कौन-सा समीचीन है ? इसके उत्तर में पंडित अगरचंदजी नाहटा निरुत्तर हैं। फिर भी उन्होंने कहा है कि जहाँ 'अरहंताणं' पाठ है वहाँ उसका अर्थ है अर्हत् अर्थात् तीर्थंकर या जिनों को नमस्कार। और 'अरुहंताणं' पाठ तो बहुत कम मिलता है। किन्तु जहाँ 'अरिहंताणं' पाठ है वहाँ उसका अर्थ होगा जिन्होंने शत्रुओं का नाश किया है उन्हें नमस्कार।

युगों-युगों से पण्डितों ने मान लिया है 'अरिहंताणं' पाठ में दो शब्द हैं : अरि + हंताणं अर्थात् जिन्होंने शत्रुओं का नाश किया है। किन्तु शब्द का ऐसा विश्लेषण कर तीर्थंकरों को शत्रुघातक उपाधि से भूषित करना उनके प्रति अन्याय और अविचार होगा। इसलिए उत्तरकाल में इस पाठ पर जैनों ने इसकी दार्शनिक तथा आध्यात्मिक व्याख्या कर बहुत सारे ग्रन्थ, टीका, टिप्पणी आदि रचना कर डाली। प्रसंगतः उल्लेख किया जा सकता है कि जहाँ प्रकृत अर्थ निरूपित नहीं होता वहीं पण्डितगण अपनी विद्या बुद्धि के अनुसार उस पाठ को केन्द्र कर किसी विशेष भाव से भावित होकर शब्द बाह्य रूप के प्रति लक्ष्य रखकर एक अर्थ करते हैं। 'अरिहंताणं' शब्द के साथ भी ऐसा ही हुआ है ऐसी मेरी धारणा है।

१९६३ के ४ नवम्बर को जैन दर्शन परिषद् के मध्यकालीन अधिवेशन में श्री अगरचन्दजी नाहटा ने विद्वत्गोष्ठी के सम्मुख नमोक्कार मंत्र—सम्बन्धी उपरोक्त प्रश्न को फिर से उठाया। जहाँ तक मुझे स्मरण है उनका वक्तव्य था कि 'अरहंताणं', 'अरिहंताणं', 'अरुहंताणं' इन तीन पाठों में कौन-सा संगत है, कौन-सा प्राचीनतम है और ऐसे पाठ का कारण क्या है ? इस प्रश्न को उठाकर उन्होंने विद्वानों से उत्तर की आशा की थी। अध्यापक एन० वी० वैद्य ने स्वरभक्ति और विप्रकर्ष के माध्यम से शब्द का इस प्रकार तीन रूप हुआ है, कहकर अपना अभिमत प्रकट किया। तत्पश्चात् डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन ने शब्द के यथार्थ के सम्बन्ध में सन्देह प्रकाश कर एन० वी० वैद्य के मत का ही प्रकारान्तर से समर्थन किया। अन्त में मुझे इस विषय पर कुछ

बोलने का अनुरोध किया गया। आचार्यश्री तुलसीगणि तथा उस विद्वत् गोष्ठी के सम्मुख मैंने जो कुछ कहा था उसका सार मर्म यहाँ लिपिबद्ध कर रहा हूँ।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर लगता है 'अरहंताणं'- पाठ ही प्राचीनतम है। कारण खृीष्ट पूर्व प्रथम या द्वितीय शताब्दी में खारवेल के शिलालेख में 'अरहंताणं' (नमो अरहंताणं नमो सवसधाणं) पाठ ही मिलता है। इसके बाद के मथुरा के शिलालेखों में भी वैसा ही पाठ मिलता है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैनों के धर्म ग्रन्थों में अधिकांश क्षेत्र में अरहंताणं पाठ ही मिलता है। यद्यपि आधुनिककाल के किसी-किसी क्षेत्र में अरिहंताणं पाठ भी पाया जाता है। इस भाँति विचार करने पर एवं किसी-किसी के मत में शौरसेनी भाषा को प्राचीनतम स्वीकृत करने पर शायद दिगम्बर आगम ग्रन्थ प्राचीनत्व का दावा कर सकते हैं, यद्यपि इस विषय को हम अभी तक अन्तिम नहीं कह सके हैं। इन बातों पर विचार करने पर लगता है अरहंताणं पाठ ही समीचीन है। किन्तु कालक्रम से चाहे अन्य शब्दों के सादृश्यवश हो अथवा प्राकृत भाषा की विवर्तन रीति के कारण से ही अन्य दो (अरिहंताणं और अरुहंताणं) पाठ की उत्पत्ति हुयी है। यद्यपि ये दोनों पाठ भी प्राकृत व्याकरण सम्मत है। अर्थात्

संस्कृत अर्हं प्राकृत में अरह
अरिह
अरुह हो सकता है।

संस्कृत अर्ह धातु पूजा के अर्थ में व्यवहृत होता है। (अर्ह पूजायाम्)। अर्ह धातु भ्वादिगणीय है और इसका अर्हति, अर्हतः, अर्हन्ति इत्यादि रूप होता है। इस अर्ह धातु के साथ शतृ प्रत्यय के योग से अर्हत् शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है पूजनीय या पूजा के योग्य। इसी अर्हत् शब्द के प्रथमा के एक वचन में अर्हन् शब्द होता है। इसका रूप अर्हन्, अर्हन्तौ, अर्हन्तः है। संस्कृत अर्हत् शब्द का षष्ठी के बहुवचन में अर्हताम् होता है। यही संस्कृत अर्हत् शब्द प्राकृत में विप्रकर्ष विधि के अनुसार अरह, अरिह एवं अरुह हो सकता है। स्वर भक्ति व विप्रकर्ष का साधारण अर्थ है कि उच्चारण के सुविधार्थ संयुक्त व्यंजन वर्ण को तोड़ कर उसमें स्वर ध्वनि लाना। यह स्वर ध्वनि साधारणतया अ इ उ हो सकता है। इस विषय में व्याकरण का सूत्र भी तुलनीय है। उच्चार्हति (हेम. २.१११) र्ह-श्री-ह्री-कृत्स्न क्रिया

दिष्ट्यास्वित (हेम. २.१०४) इत्यादि सूत्रों में अर्ह शब्द का प्रयोग है। फलतः अरह, अरिह, अरुह हो सकता है। संस्कृत में जहाँ शतृ प्रत्यय होता है प्राकृत में वहाँ (अ) न्त होता है। अतएव अरह शब्द के साथ शतृ प्रत्यय का योग होने पर प्राकृत में अरह-न्त होता है। इस प्रकार 'अरिह-न्त' एवं 'अरुह-न्त' हो सकता है। शतृ प्रत्यय के अन्त में यही अरह-न्त शब्द का षष्ठी के बहुवचन में अरह-न्ताणं, अरिह-न्ताणं और अरुहन्ताणं हो जाता है।

प्राकृत में षष्ठी के बहुवचनान्त विभक्ति का रूप होता है 'णं'। यही 'णं' जिस शब्द के पूर्व जुड़ता है उसका पूर्व स्वर दीर्घ होता है। इसलिए उन तीनों शब्दों के 'णं' का पूर्व आकार दीर्घ हो गया है। संक्षेप में शब्द इस प्रकार हुए—

अरह + न्त + आ + णं = अरहंताणं
अरिह + न्त + आ + णं = अरिहंताणं
अरुह + न्त + आ + णं = अरुहंताणं

ये तीनों शब्द संस्कृत अर्ह से निष्पन्न होने से इनके अर्थ भी एक होना चाहिए। किन्तु अरहन्त और अरुहन्त शब्द का अर्थ एक है ऐसा अनेकों का कहना है। किन्तु अरिहन्त शब्द के लिए वे एक भिन्न मत रखते हैं। इसका कारण क्या है? इसके उत्तर में कहा गया है कि अरिहन्त शब्द संस्कृत अरिहन्त शब्द को स्मरण करा देने के कारण प्राकृत अरिहन्त शब्द को संस्कृत के अनुसार अरि + हन्त इस प्रकार विश्लेषित कर यह जो एक शतृ प्रत्ययान्त शब्द है यह भूलकर इसका अर्थ करते हैं 'जो शत्रु की हत्या करते हैं'। किन्तु अरहन्त शब्द को अर + हन्त इस प्रकार विश्लेषित करने पर कोई ठीक अर्थ नहीं होता। इसलिये वे शब्द को उस प्रकार विश्लेषित नहीं करते। यद्यपि संस्कृत 'अर' शब्द का अर्थ spoke है और इस अर्थ में संस्कृत साहित्य में इसका बहुल प्रयोग भी हुआ है किन्तु वह अर्थ तीर्थंकरों के सम्बन्ध में उपयुक्त नहीं है इसलिए पण्डितगण अरहन्त शब्द का पूजनीय अर्थ कर लेते हैं। इस भाँति अरुहन्त शब्द को अरु + हन्त इस प्रकार विश्लेषित नहीं करते। कारण इस प्रकार विश्लेषित करने पर अर्थ की संगति नहीं बैठती। केवल अरिहन्त शब्द के लिए वे अरि + हन्त रूप में विश्लेषित करते हैं और अरि शब्द का शत्रुनाशक अर्थ में तीर्थंकरों के लिए शिष्ट प्रयोग नहीं है, इसलिए इसकी एक आध्यात्मिक और दार्शनिक व्याख्या कर देते हैं। उनका कहना है जिसने मन के शत्रु को जीता उसे अरिहन्त कहते हैं। असल में अरि

अर्थात् शत्रु की जो हत्या करता है उसको नमस्कार करना विधिसंगत नहीं है। विशेष कर यह जैन धर्म के प्रतिकूल है। किन्तु मूलतः शब्द अरि + हन्त नहीं है शब्द है अरिहन्त और इसका अर्थ पूज्य या पूजनीय। इसका अर्थ शत्रुनाश करने के पीछे अर्थगत कोई यौक्तिकता नहीं है। विशेष कर जब इसका संस्कृत रूप 'अर्हद्भ्यः' दिया जाता है। ऐसा नहीं होने पर इसका संस्कृत रूप होता 'अरिहन्तृभ्यः'।

अब यह प्रश्न उठता है कि अरह, अरिह एवं अरुह शब्दों में भाषागत भाव से सबसे पुराना कौन है? प्रथमतः विप्रकर्ष के विधान के अनुसार जो स्वरागम होता है पण्डितगण उस विषय में एक नियम को दृष्टिगत करते हैं। उनके मत में साधारणतः विप्रकर्ष के नियमानुसार जहाँ 'अ' आगम होता है वहाँ वर्ण के मध्य अ धर्मी वर्ण का समावेश रहता है। ठीक इसी प्रकार 'इ' धर्मी वर्ण का सान्निध्य रहने पर इकार एवं 'उ' धर्मी वर्ण का सान्निध्य रहने पर उकार होता है, यद्यपि इस नियम का भी अनेक व्यतिक्रम पाया जाता है। उसका भी स्थल विशेष में विशेष-विशेष कारण है। फिर भी भाषा के सम्बन्ध में उपर्युक्त नियम अनेकांशतः अनुसरण किया जाता है। अर्ह शब्द का विप्रकर्ष विधि के अनुसार प्रथम अकार आगम होकर अरह शब्द की उत्पत्ति होना स्वाभाविक है। कारण अ के पश्चात् जो ह कार है उसका उच्चारण स्थान कण्ठ्यवर्ण है एवं अकार का उच्चारण स्थान कण्ठ्यवर्ण है (अ-कू-ह-विसर्जनीयानां कण्ठ्यः) एवं अ-कार व ह-कार वर्ण का उच्चारण समता है। अतः अर्हत् शब्द का आदि रूप एवं प्राचीनतम रूप 'अरह' होना संगत लगता है। यह अरह शब्द ही खारवेल के शिलालेख में प्राचीनतम प्रयोग रूप में पाया जाता है। अतएव ऐतिहासिक एवं भाषातात्विक दृष्टि से देखने पर यही समझ में आता है कि अरह शब्द ही प्राचीनतम है।

यदि ऐसा ही है तो उपर्युक्त दोनों शब्दों की उत्पत्ति किस प्रकार हुयी?

अर्ह शब्द सादृश्य के (analogy) प्रभाव से अरिह और अरुह हुआ है। जिस प्रकार 'क्लेश' शब्द किलेस, 'श्लेष' सिलेस हो जाता है उसी प्रकार प्रभाव के अनुसार 'अर्ह' शब्द भी अरिह हो गया है। अरुह शब्द एकदम अर्वाचीन है और इसका प्रयोग भी जैन ग्रन्थों में विरल है। जिस कारण से अकार और इकार के सहयोग से अरह एवं अरिह शब्द का प्रयोग हुआ है उसी कारण से उकार के सहयोग से अरुह शब्द का प्रयोग हुआ है। अरुह शब्द व्याकरणगत और भाषातत्वगत भाव से मान लेने पर भी प्रयोगगत

ध्यान से परवर्ती काल की सादृश्यमूलक रचना है। सम्भवतः इसके पीछे कोई साम्प्रदायिक मनोभाव रहा है। प्राचीन दिगम्बर ग्रन्थों में साधारणतः अरुह शब्द पाया जाता है। कभी-कभी अरिह भी दृष्टिगोचर होता है। यह भी शायद प्रभावजात या संशोधनगत हो सकता है। श्वेताम्बर ग्रन्थों में साधारणतः 'अरिह' शब्द पाया जाता है। इन दोनों सम्प्रदायों की कोई एक शाखा में पार्थक्य निर्णय के लिए हो सकता है अरुह का प्रयोग हुआ हो। ऐतिहासिक, भाषातत्व या व्याकरणगत और प्रयोगगत दृष्टि से मैं इसी सिद्धान्त पर आया हूँ। इसके सत्यासत्य निर्णय का भार पण्डितों पर छोड़ दिया है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

लवण और अंकुश राजा वज्रजंघ और पृथु सहित वहाँ से प्रस्थान कर गए। राह में आए अनेक देशों को जय करते हुए वे लोकपुर नामक नगर के निकट पहुँचे। उस समय वहाँ धैर्य और शौर्य सम्पन्न कुबेरकान्त नामक अभिमानी राजा राज्य करते थे। उसको भी इन्होंने युद्ध में जीत लिया। वहाँ से चलकर उन्होंने विजयस्थली में भ्रातृशत नामक राजा को जीता। वहाँ से गंगा नदी अतिक्रम कर वे उत्तर में कैलाश पर्वत की ओर गए। वहाँ उन्होंने नन्दन और चारु राजा के देशों को जीत लिया। तदुपरान्त रूष, कुन्तल, कालाम्बु, नन्दि-नन्दन, सिंहल, शलभ, अनल, शूल, भीम, भूतरव आदि देशों के राजाओं को जय करते हुए वे सिन्धु नदी के तट पर उपस्थित हो गए। वहाँ भी वे अनेक आर्य-अनार्य राजाओं को जीतते हुए पुण्डरीकपुर लौट आए। नगरवासियों ने वज्रजंघ को यह कहकर धन्यवाद दिया—धन्य हैं राजा वज्रजंघ जिनके ऐसे पराक्रमी भानजे हैं। नगर में इनकी शोभायात्रा निकली। अन्यान्य राजाओं से परिवृत्त हुए वीर लवण और अंकुश सुशोभित हो रहे थे। पुरवासी हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से उन्हें देख रहे थे।

प्रासाद में आकर दोनों भाइयों ने विश्व-पवित्रकारी माता सीता के चरणों में प्रणाम किया। सीता ने आनन्दाश्रु से उन्हें अभिसिंचित कर उनके मस्तक को चूमा और आशीर्वाद दिया, 'तुम दोनों राम-लक्ष्मण बनो।'

तत्पश्चात् लवण और अंकुश ने वज्रजंघ से जाकर कहा, 'मामाजी, आपने हमें अयोध्या जाने की अनुमति तो पहले ही दे दी थी अब उसे कार्यान्वित करें। लंपाक, रूष, कालाम्बु, कुन्तल, शलभ, अनल, शूल और अन्यान्य देश के राजाओं को भी आदेश दीजिए, प्रयाण वादित्र बजवाइए ताकि सेना द्वारा दिक् समूह को आच्छादित कर हम अपनी माँ का परित्याग करने वाले राम के पराक्रम को देख सकें।'

यह सुनकर सीता अश्रुसिक्त नैत्रों एवं गद्गद् कण्ठ से बोली, 'वत्स, ऐसा विचार कर तुमलोग अनर्थ की इच्छा क्यों कर रहे हो? तुम्हारे चाचा और पिता तो देवताओं के लिए भी अजेय हैं। उन्होंने त्रिलोक के कण्टक रूप लंकापति रावण का भी संहार कर दिया। तुम लोग यदि अपने पिता को

देखना चाहते हो तो नम्र बनकर वहाँ जाओ। कारण पूज्य व्यक्तिओं से विनय पूर्वक व्यवहार करना चाहिए।'

वे प्रत्युत्तर में बोले, माँ, 'आपका परित्याग करने वाले राम हमारे शत्रु पद पर हैं। अतः अभी हम उनकी विनय कैसे करें? हम कैसे जाकर उनसे कह सकते हैं कि हम दोनों आपके पुत्र हैं। ऐसा करना उनके लिए भी लज्जा का कारण होगा। किन्तु हम यदि उन्हें युद्ध में परास्त करें तो यह उनके लिए आनन्द का कारण होगा। इसी में उभय कुल की शोभा है।'

सीता कुछ नहीं बोली, केवल रोने लगी। दोनों भाई एक वृहद् सैन्य लेकर अयोध्या की ओर रवाना हो गए। कुठार और कुदाल लिए दस हजार लोग उनकी सेना के आगे पथ परिष्कृत करते हुए चलने लगे। युद्ध की इच्छावाले दोनों वीर क्रमशः स्वसैन्य से दिक समूह को अच्छादित करते हुए अयोध्या के निकट जा पहुंचे।

अपने नगर के बाहर एक वृहद सैन्यदल के आने की बात सुनकर राम-लक्ष्मण विस्मित हो गए। दोनों ही मन ही मन हँसे। लक्ष्मण बोले, 'आर्य, अग्रज राम के पराक्रम रूपी अग्नि में जल मरने को कौन आया है?' फिर शत्रुरूपी अन्धकार में सूर्य-से राम-लक्ष्मण सुग्रीवादि वीर सहित युद्ध के लिए नगर से बाहर निकले।

नारद से भामण्डल को सीता का संवाद मिला। वे तत्काल विमान में बैठकर सीता के पास पुण्डरीकपुर गए। सीता रोते-रोते बोली, 'भैया, राम ने मेरा त्याग किया है। मेरा त्याग तुम्हारे भानजों को सहन नहीं हुआ अतः वे राम से युद्ध करने गए हैं।'

भामण्डल बोले, 'राम ने रभसवृत्ति से अर्थात् बिना कुछ सोचे तुम्हारा त्याग किया है। अब कहीं स्वपुत्रों को मार डालने का अविवेकपूर्ण कार्य न कर बैठें। क्योंकि उन्हें तो ज्ञात नहीं है कि वे उनके पुत्र हैं। इसलिए राम उन्हें मार डालें उसके पूर्व ही मैं वहाँ पहुँचता हूँ।'

तदुपरान्त भामण्डल सीता को अपने विमान में बैठाकर लवण और अंकुश की छावनी में जा पहुँचे। लवण और अंकुश ने सीता को प्रणाम किया सीता उनसे बोली, 'ये तुम्हारे मामा हैं, इनका नाम है भामण्डल' तब दोनों भाइयों ने उन्हें प्रणाम किया। भामण्डल ने उनका मस्तक सूँघा। उनका शरीर हर्ष से रोमांचित हो उठा। वे उन दोनों को गोद में बैठाकर गद्‌गद् कण्ठ से बोले, 'मेरी बहन पहिले वीर पत्नी थी अब सौभाग्य से वीर माता हो गयी है। तुम्हारे जैसे वीर पुत्रों के कारण उसकी निर्मलता चाँद से भी अधिक हो

गयी है। हे पुत्रों, यद्यपि तुमलोग वीर पुत्र हो, स्वयं भी वीर हो, फिर भी तुमलोग अपने पिता और चाचा के साथ युद्ध मत करो। कारण रावण जैसा योद्धा जो कि अतुल भुजबल के साथ-साथ विद्याबल का भी अधिकारी था वह भी जब युद्ध में उनके सन्मुख खड़ा हो नहीं पाया, उन महाबलवान वीरों के साथ मात्र स्व भुजबल से युद्ध करने का साहस तुमलोग कैसे कर रहे हो?'

लवण और अंकुश ने उत्तर दिया, 'मामाजी, आप स्नेहवश ऐसी भीरुता मत दिखाइए। माँ ने भी ऐसा कहकर हमें भय दिखाया था। हम जानते हैं राम और लक्ष्मण से युद्ध करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है किन्तु अब युद्ध से विमुख होकर उन्हें लज्जित क्यों करें?'

इधर जब इस प्रकार की बात हो रही थी तभी राम और उनकी सेना में प्रलय काल के मेघ-सा युद्ध प्रारम्भ हो गया। अतः भामण्डल इसी आशंका से युद्ध क्षेत्र में गए कहीं सुग्रीवादि खेचर इस स्थल सैन्य को विनष्ट न कर दें।

तदुपरान्त अत्यन्त रोमांच से जिनके कवच उच्छ्वसित हो गए थे ऐसे महापराक्रमी दोनों राजकुमार युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। निःशंक युद्ध करते हुए सुग्रीवादि ने जब भामण्डल को अपने सम्मुख देखा तो उनसे पूछा—'ये दोनों कुमार कौन हैं?' भामण्डल ने कहा, 'ये राम के पुत्र हैं।' यह सुनकर सुग्रीवादि खेचर तुरन्त सीता के पास गए, उन्हें प्रणाम कर नीचे बैठ गए।

प्रलय काल के समुद्र की तरह उद्भ्रान्त दुर्द्धर और महा पराक्रमी लवण और अंकुश ने क्षण मात्र में राम की सेना को भग्न कर डाला। वन-सिंह की भाँति वे जहाँ भी गए उधर ही रथी, अश्वारोही एवं गजारोही कोई भी हाथ में अस्त्र लिए उनके सन्मुख खड़ा नहीं रह सका। इस प्रकार राम की सेना को छिन्न-भिन्न करते हुए अस्खलित गति से वे राम और लक्ष्मण से युद्ध करने लगे। उन्हें देखकर राम और लक्ष्मण परस्पर कहने लगे, 'हमारे शत्रु रूप में ये दोनों कुमार कौन हैं?'

राम बोले, 'इन दोनों कुमारों के प्रति मन में स्वाभाविक स्नेह-उत्पन्न हो रहा है। इन्हें गले लगाने की इच्छा हो रही है। मन को विवश कर किस प्रकार इनके प्रति वैर भाव उत्पन्न करूँ? समझ नहीं पा रहा हूँ उनके साथ कैसा व्यवहार करूँ?'

रथ में बैठे राम जब इस प्रकार लक्ष्मण से कह रहे थे उसी समय लवण और अंकुश उनके रथ के सामने जा खड़े हुए। अंकुश बोला, 'वीरयुद्ध में हमारी बड़ी श्रद्धा है। जगत के लिए अजेय रावण को आपने पराजित किया

है। अतः आपको देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुयी। हे राम और लक्ष्मण, आपकी जिस युद्ध-इच्छा को रावण पूरी नहीं कर सका उसको हम पूर्ण करेंगे।'

तदुपरान्त राम, लक्ष्मण, लवण और अंकुश ने अपने-अपने धनुष पर भयंकर ध्वनियुक्त टंकार की। कृतान्त सारथी राम के रथ को और वज्रजंघ सारथी ने लवण के रथ को एक दूसरे के सम्मुख ले आए। उसी प्रकार विराध सारथी लक्ष्मण के रथ को और सारथी राजा पृथु अंकुश के रथ को एक दूसरे के सामने लाकर खड़ा कर दिया। चारों का युद्ध प्रारम्भ हुआ। चारों चतुर सारथी भी विभिन्न प्रकार से रथ को घुमाने लगे। चारों योद्धा नाना प्रकार के अस्त्रों से एक दूसरे पर वार करने लगे।

लवण और अंकुश राम-लक्ष्मण के साथ अपने सम्बन्ध को जानते थे। इसलिए वे लोग सापेक्ष विचार रखकर शस्त्र प्रहार कर रहे थे। किन्तु राम लक्ष्मण इस सम्बन्ध को जानते नहीं थे। अतः निरंकुश होकर शस्त्र प्रहार कर रहे थे।

विविध आयुधों द्वारा युद्ध करने के पश्चात् युद्ध को शीघ्र समाप्त करने की इच्छा से रामने सारथी को रथ ठीक शत्रु के सम्मुख करने को कहा। कृतान्त वदन बोले, 'मैं क्या करूँ ? मेरे रथ के अश्व क्लान्त हो गए हैं। शत्रु ने शराघात से इनकी देह वींध डाली है। मैं चाबुक मारता हूँ किन्तु ये अपनी गति तेज करते ही नहीं है। रथ भी जर्जर हो गया है। इतना ही नहीं मेरी भुजाएँ भी शराघात से जर्जर हो गयी हैं। अतः घोड़े की लगाम और चाबुक पकड़ने की भी अब इनमें शक्ति नहीं है।'

राम बोले, 'मेरा वज्रावर्त धनुष भी चित्रस्थ—चित्र में अंकित धनुष सा शिथिल हो गया है। अतः कोई काम नहीं कर रहा है। और यह मूसल-रत्न भी शत्रु का नाश करने में असमर्थ हो गया है। अब तो इसमें मात्र धान कूटने की योग्यता रह गयी है। यह हल-रत्न जो कि दुष्ट राजारूपी हस्तियों को वशीभूत करने के लिए अंकुश रूप था वह मात्र धरती कर्षण करने योग्य रह गया है। जिन अस्त्रों की रक्षा देव करते हैं, जो अस्त्र सर्वदा शत्रुओं को विनष्ट करते हैं उन्हीं अस्त्रों की आज यह कैसी दशा हो गयी है ?'

इधर लवण के साथ युद्ध करते-करते राम के अस्त्र जिस प्रकार कार्य नहीं कर रहे थे उसी प्रकार लक्ष्मण के अस्त्र भी कार्य नहीं कर रहे थे।

अंकुश ने लक्ष्मण के हृदय पर वज्र-सा प्रहार किया। उसके आघात से लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण को मूर्च्छित देखकर विराध डर

गया और रथ को रणभूमि से अयोध्या की ओर ले जाने लगा। राह में ही लक्ष्मण को होश आ गया। वे क्रुद्ध होकर बोले, 'तुमने यह सर्वथा नया कार्य कर डाला? राम के भाई और राजा दशरथ के पुत्र के लिए युद्ध भूमि से चला जाना अनुचित है। अतः जहाँ शत्रु है वहीं मुझे शीघ्र ले चलो। मैं अभी चक्र से शत्रु का शिरश्च्छेद कर डालूँगा।'

लक्ष्मण का कथन सुनकर विराध रथ को पुनः युद्ध भूमि में ले आया। 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए लक्ष्मण चक्र लेकर उसे घुमाने लगे। घूमता हुआ चक्र सूर्य का भ्रम उत्पन्न करने लगा। लक्ष्मण ने उसी अस्खलित गति से चक्र को घुमाकर क्रोधपूर्वक अंकुश पर फेंका। आगत चक्र को काटने के लिए अंकुश ने अनेक तीरोंको छोड़ा किन्तु वह चक्र काटा नहीं गया। पूरे वेग से वह चक्र आया और अंकुश को प्रदक्षिणा देकर पुनः उसी प्रकार लक्ष्मण के हाथों में लौट गया, जिस प्रकार पक्षी नीड़ में लौट जाते हैं। लक्ष्मण ने द्वितीय बार चक्र निःक्षेप किया किन्तु दूसरी बार भी चक्र अंकुश को प्रदक्षिणा देकर गजशाला से भागा हाथी जिस प्रकार पुनः गजशाला में लौट जाता है उसी प्रकार लक्ष्मण के हाथों में लौट गया।

यह देखकर राम-लक्ष्मण खेद पूर्वक सोचने लगे—तब क्या ये दोनों कुमार ही भरतक्षेत्र के वासुदेव और बलदेव हैं, हम नहीं हैं? जब वे लोग इस प्रकार सोच रहे थे उसी समय सिद्धार्थ सहित नारद मुनि वहाँ आए और खेद भरे राम और लक्ष्मण से बोले, 'हे राम, आनन्दित होने के बदले तुम खेद क्यों कर रहे हो? ये दोनों तुम्हारे पुत्र हैं। सीता के गर्भ से इनका जन्म हुआ है। इनके नाम लवण और अंकुश है। युद्ध के बहाने ये तुम्हें देखने आए हैं। ये तुम्हारे शत्रु नहीं है इसीलिए इन पर तुम्हारे चक्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। चक्र मित्र पर कार्यकर नहीं होता। अतीत में बाहुबली पर भी तो भरत द्वारा निक्षिप्त चक्र निष्फल हो गया था।'

तदुपरान्त नारदमुनि ने सीता-परित्याग से लेकर युद्ध पर्यन्त जगत विस्मयकारी घटनाओं का वर्णन किया उस वृतान्त को सुनकर आश्चर्य, लज्जा, आनन्द और शोक से व्याकुल होकर राम मूर्च्छित हो गए। उन पर चंदन जल के छींटे डाले गए जिससे ज्ञान लौट आने पर पुत्र वात्सल्य से अधीर राम अश्रु पूर्ण नेत्रों से लक्ष्मण को साथ लेकर लवण और अंकुश से मिलने गए। उन्हें आते देखकर विजयी लवण और अंकुश शस्त्रों का परित्याग कर रथ से नीचे उतरे और राम लक्ष्मण के चरणों में गिर पड़े।

रामने उन्हें उठाकर छाती से लगाया फिर गोद में बैठाकर मस्तक सूँघा। तदुपरान्त शोक और स्नेह से व्याकुल होकर उच्चस्वर से क्रन्दन करने लगे। राम की गोद से लक्ष्मण ने उन्हें अपने गोद में बैठाकर छाती से लगा लिया और अश्रु भरे नयनों से उनके मस्तक का आघ्राण किया। शत्रुघ्न को पिता तुल्य समझ कर उन लोगों ने उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। शत्रुघ्न ने भी उन विनीत पुत्रों को आलिंगन में ले लिया। दोनों पक्षों के अन्यान्य राजागण एकत्रित होकर इस अपूर्व मिलन के आनन्द को देखकर हर्षित हो गए।

पुत्रों का पराक्रम और पिता से उनका मिलन देखकर सीता हर्षित हो गयी। वह वहाँ से विमान में बैठकर पुण्डरीकपुर चली गयी। उन जैसे बलवान पुत्रों को प्राप्त कर राम-लक्ष्मण बहुत आनन्दित हुए। समस्त भूचर और खेचर भी प्रसन्न हो उठे। भामंडल ने वज्रजंघ का राम और लक्ष्मण से परिचय करवाया। वज्रजंघ ने चिरकाल के सेवक की तरह उन्हें प्रणाम किया।

राम वज्रजंघ से बोले, 'हे भद्र, आपने मेरे पुत्रों का लालन-पालन कर उन्हें बड़ा किया और उन्हें इस अवस्था में ले आए इसलिए आप मेरे लिए भामण्डल के समान हैं।'

तदुपरान्त राम-लक्ष्मण अपने पुत्रों के साथ पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या गए। विस्मय भरे लोग एड़ी के बल पर खड़े होकर गर्दन उठा-उठा कर लवण और अंकुश को देखने लगे और उनकी स्तुति करने लगे। राम अपने प्रासाद के निकट पहुँचे। रथ से उतर कर भीतर प्रविष्ट हुए। रामने पुत्रों के आगमन में महा महोत्सव करवाया।

लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगद आदि सभी ने मिलकर राम से निवेदन किया—

'प्रभो, देवी सीता आपके विरह में व्याकुल विदेश में जीवन व्यतीत कर रही है। अब कुमारों के वियोग हो जाने से वे और अधिक दुखी हो गयी हैं। अतः आप यदि आदेश दें तो हम जाकर उन्हें यहाँ ले आएँ। यदि आप उन्हें नहीं बुलाएँगे तो पति-पुत्र विहीना वे मृत्यु को प्राप्त हो जाएँगी।'

राम कुछ सोचकर बोले, 'सीता को यहाँ कैसे बुलाया जा सकता है। लोकोपवाद मिथ्या होने पर भी वहुत बड़ा अन्तराय है। मैं जानता हूँ सीता

सती है। वह भी अपनी आत्मा को पवित्र समझती है। यदि वह सब लोगों के सामने सतीत्व प्रमाणित करे तो मैं उस शुद्ध सती को ग्रहण कर सकता हूँ।'

'ऐसा ही होगा' कहकर वे वहाँ से चले गए। फिर उन्होंने नगर के बाहर एक विशाल मण्डप का निर्माण करवाया जिसमें पंक्तिबद्ध बैठने की व्यवस्था थी। उसी में सामने राजा मन्त्री नगरवासी राम-लक्ष्मण और विभीषण सुग्रीव आदि खेचर आकर बैठ गए। तब राम ने सीता को लाने का आदेश दिया। सुग्रीव विमान में बैठकर पुण्डरीकपुर पहुँचे। वे सीता को नमस्कार कर बोले, 'हे देवी, राम ने आपके लिए पुष्पक विमान भेजा है अतः इस पर चढ़कर आप अयोध्या चलें।'

सीता बोली, 'राम ने मुझे अरण्य में भेज दिया था। उस दुःख की ज्वाला आज भी शान्त नहीं हुयी है। अतः द्वितीय दुःख देने के लिए बुलाने वाले राम के पास मैं कैसे जाऊँ?'

सुग्रीव ने पुनः नमस्कार कर कहा, 'हे देवी, क्रुद्ध न हों, राम ने आपकी शुद्धि का निश्चय किया है। मण्डप तैयार हो गया है। वे अन्यान्य राजा और पुरवासियों के साथ वहाँ बैठे हैं।'

सीता ने तो शुद्धता की परिचायक परीक्षा पूर्व ही देनी चाही थी। अतः सुग्रीव की यह बात सुनकर वे विमान पर चढ़ गयीं। सुग्रीव सहित वे अयोध्या के निकट महेन्द्र उद्यान में उतरीं। वहाँ लक्ष्मण और अन्यान्य राजाओं ने अर्घ्य प्रदान कर उन्हें नमस्कार किया फिर लक्ष्मण और अन्य राजागण उनके सामने बैठकर बोले—'हे देवी, आप नगर और गृह में प्रवेश कर उन्हें पवित्र करें।'

सीता बोली, 'हे वत्स, शुद्धि प्राप्त करने के पश्चात ही मैं नगर में प्रवेश कर सकूंगी क्योंकि ऐसा नहीं होने पर निन्दा कभी शान्त नहीं होगी।'

सीता का यह दृढ़ निश्चय उन्होंने राम को जाकर सुनाया। राम वहाँ आए और सीता से न्यायनिष्ठुर वचन बोले, 'यदि तुम रावण के वहाँ पवित्र रही, रावण ने तुम्हें अपवित्र नहीं किया तो अपनी शुद्धता के लिए सब के सम्मुख दिव्य करो।'

सीता मृदु हँसती हुयी बोली, 'आप जैसा विचक्षण और कौन है जो दोषी है कि नहीं यह जाने बिना ही अभियुक्त को परित्याग कर वन में भेज दिया। यह भी आपकी विचक्षणता है जो दण्ड देकर आप उसकी परीक्षा लेना चाह रहे हैं। खैर, तो भी मैं उसके लिए प्रस्तुत हूँ।'

सीता की बात सुनकर राम म्लान मुख से बोले, 'हे भद्रे, मैं जानता हूँ तुम सर्वथा निर्दोष हो फिर भी लोगों के मन में जो द्वेष भाव, उत्पन्न हुआ है उसके निराकरण की आवश्यकता है।'

सीता बोली, 'मैं पाँचों प्रकार से दिव्य करने को प्रस्तुत हूँ। कहें तो अग्नि में प्रवेश करूँ, कहें तो अभिमंत्रित तन्दुल भक्षण करूँ, कहें तो कच्चे धागे से बँधी तराजू में बैठ जाऊँ, कहें तो पिघलाया हुआ सीसा पान करूँ या जीभ से शस्त्र को धार की ओर से उसे उठाऊँ।'

उसी समय अन्तरिक्ष स्थित नारद और सिद्धार्थ और भूमिस्थ लोक समूह कोलाहल कर बोल उठे—'हे राघव, सीता वास्तव में सती, सती, महासती है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह करना उचित नहीं है।'

राम लोगों के मुख से यह बात सुनकर उन्हें सम्बोधित करते हुए बोले, 'आप लोग सर्वथा मर्यादाविहीन हैं। मेरे हृदय में सन्देह आप लोगों के कारण ही उत्पन्न हुआ। पहले आप लोग ही सीता को दूषित बतला रहे थे और आज उसे सती बतला रहे हैं। हो सकता है यहाँ से जाने के बाद आप लोग अन्य कुछ बोलना प्रारम्भ कर देंगे। बोलिए, पहले सीता किस प्रकार दूषित थी और आज वह किस प्रकार शीलवती हो गयी! आप लोग आगे फिर उसे दूषित कह सकेंगे। इसीलिए मेरी इच्छा है सीता सबकी प्रतीति के लिए अग्नि दिव्य कर अग्नि में प्रवेश करे।'

तदुपरान्त राम ने तीन सौ हाथ दीर्घ, तीन सौ हाथ प्रस्थ दो पुरुष प्रमाण गंभीर गर्त खुदवाया और उसे चन्दन काष्ठ से भर दिया।

वैताढ्य गिरि की उत्तर श्रेणी पर हरिविक्रम राजा का जयभूषण नामक पुत्र था। उसके ८०० विवाहित स्त्रियाँ थी। एक बार उसने अपनी किरण-मण्डला नामक पत्नी को हिमशिख नामक उसके मामा के साथ एक शय्या पर सोते हुए देखा। इससे क्रुद्ध होकर उसने किरणमण्डला को घर से निकाल दिया। किन्तु उसके पश्चात ही उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अतः उसने दीक्षा ले ली। किरणमण्डला मरकर विद्युत्द्रंष्टा नामक राक्षसी के रूप में उत्पन्न हुयी। जयभूषण सीता के दिव्य होने के पहले दिन रात्रि में अयोध्या के बाहर कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित था। विद्युत्द्रंष्टा वहाँ आकर उपसर्ग करने लगी किन्तु मुनि अविचल रहे। शुभ ध्यान के कारण सीता के दिव्य होने के दिन उन्हें केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। केवलज्ञान महोत्सव करने के लिए इन्द्रादि देव वहाँ आए। उसी समय सीता शुद्धि प्रमाणित करने के

लिए अग्नि प्रवेश कर रही थी। देवों ने जब यह देखा तो इन्द्र से निवेदन किया 'हे प्रभु, लोगों की मिथ्या निन्दा के कारण सीता आज अग्नि प्रवेश कर रही है। यह सुनकर इन्द्र ने स्वपदातिक सैन्य के सेनापति को सीता की सहायता के लिए प्रेरित किया और स्वयं जयभूषण मुनि के केवल ज्ञान महोत्सव में योग देने के लिए चले गए।

उधर राम की आज्ञा से चन्दन काष्ठ पूरित उस गर्त में सेवकों ने अग्नि प्रज्वलित कर दी। अग्नि ने भयंकर रूप धारण कर लिया। उस लपलपाती हुयी अग्नि की ओर तो देखना भी असम्भव हो गया था। अग्नि की उस विकट ज्वाला को देखकर राम मन ही मन सोचने लगे, ओफ, यह बड़ा विषम कार्य हो गया। महासती सीता तो अभी निःशंक होकर इस अग्नि में कूद पड़ेगी। प्रायः देव और विज्ञों की गति विषम ही होती है। सीता मेरे साथ वन गयी, रावण ने उसका हरण किया। तदुपरान्त मैंने उसका त्याग कर वन भेज दिया। अन्ततः अब यह अग्नि प्रवेश का कष्ट उपस्थित हुआ है। यह सब कुछ मैंने ही किया, मेरे द्वारा ही हुआ।

राम जब इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे उसी समय सीता उस प्रज्वलित अग्नि के समीप गयी और सर्वज्ञ देवों को स्मरण कर बोल उठी, 'हे लोकपाल, हे जल समूह, सुनो—यदि आज तक मैंने राम के सिवाय किसी पुरुष की इच्छा की हो तो यह अग्नि मुझे दग्ध कर डाले और यदि नहीं की है तो इसका स्पर्श जल की तरह शीतल हो जाए।'

तत्पश्चात् नमस्कार महामंत्र का जाप करते हुए सीता उस अग्नि कुण्ड में कूद पड़ी। उसके कूदते ही गर्त की अग्नि निर्वापित हो गयी। उस गर्त में स्वच्छ जल भर गया और उसने एक सरोवर का रूप धारण कर लिया। देवों ने सीता के सतीत्व से संतुष्ट होकर उस जल में कमल पर सिंहासन स्थापित किया। सीता जाकर उस सिंहासन पर बैठ गयी। उस सरोवर का जल समुद्र तरंगों की भाँति तरंगायित होने लगा। जल में से कहीं हुंकार ध्वनि, कहीं गुलगुल शब्द, कहीं भेरीघोष, कहीं कलकल तो कहीं खल खल शब्द निकलने लगा।

तदुपरान्त ज्वार के समय समुद्र जिस प्रकार स्फीत हो जाता है उसी प्रकार वह जल स्फीत हो गया। वह जल उस गर्त से निकलकर बड़े-बड़े मंचो को आच्छादित कर प्रवाहित होने लगा। विद्याधरगण भयभीत होकर आकाश में उड़ गए। किन्तु भूचर मनुष्य आर्तस्वर में बोलने लगे, 'हे महासती सीता, हे देवी, हमें बचाओ, हमारी रक्षा करो।'

सीता ने उस स्फीत जल को दोनों हाथों से दबा दिया। जल पूर्ववत् हो गया। उस सरोवर की शोभा अत्यन्त मनोहारी हो गयी थी। उसमें उत्पन्न कुमुद पुण्डरीक जाति के कमल प्रस्फुटित हो गए। कमल गन्ध से आकृष्ट होकर उन्मत्त भ्रमर गुन-गुन करने लगे। सरोवर के चारों ओर मणिमय पाषाणों से बँधा घाट परिदृष्ट होने लगा। निर्मल जल की तरंगे आ-आकर किनारों से टकराने लगी।

सीता के शील की प्रशंसा करते हुए नारदादि आकाश में नृत्य करने लगे। सन्तुष्ट हुए देव सीता पर पुष्प वर्षा करने लगे। 'अहो! राम-पत्नी सीता कितनी यशस्वी है'—इस ध्वनि से आकाश और पृथ्वी गुंजायमान हो गए। अपनी माँ का प्रभाव देखकर लवण और अंकुश अत्यन्त आनन्दित हो गए और हँस की तरह तैरते हुए उसके पास पहुँच गए। सीता ने उनके मस्तक को सूँघ कर अपने दोनों ओर बैठाया। वे दोनों कुमार नदी के दोनों तटों पर अवस्थित दो हस्ती शावक से सुशोभित होने लगे।

उसी समय लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भामंडल, विभीषण, सुग्रीवादि वीरों ने आकर भक्ति भाव से सीता को प्रणाम किया। तदुपरान्त अति मनोहर कान्ति युक्त राम भी सीता के पास आए। उनका हृदय लज्जा और पश्चाताप से भर उठा था। वे करबद्ध होकर बोले, 'हे देवी, स्वभाव से ही पर-दोष देखने वाले नगरवासियों के कहने से मैंने तुम्हारा परित्याग किया इसके लिए मुझे क्षमा करो। भयंकर हिंसक पशुओं के वन में भी तुम स्वप्रभाव से जीवित थी। वह एक प्रकार से तुम्हारा दिव्य ही था। किन्तु मैं वह समझ नहीं सका। जो कुछ भी हो अब तुम मुझे मेरे पूर्व कृत्यों के लिए क्षमा करो। इस पुष्पक विमान में बैठकर घर चलो और पूर्व की तरह ही मुझे आनन्दित करो।'

सीता बोली, 'इसमें आपका या अयोध्यावासियों का क्या दोष? दोष तो मेरे पूर्व कर्मों का है। अतः दुःख के आवर्त में डालने वाले कर्मों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए, उन्हें नष्ट करने के लिए मैं अब दीक्षा ग्रहण करूँगी।'

ऐसा कहकर सीता ने अपने हाथों से केश उत्पाटन कर जिस प्रकार तीर्थंकर अपने केशों को इन्द्र के हाथों में दे देते हैं, उसी प्रकार राम के हाथों में दे दिया। यह देखकर राम मूर्च्छित हो गए। राम की मूर्च्छा टूटने के पूर्व ही सीता जयभूषण मुनि के निकट चली गयी। जयभूषण मुनि ने सीता को तत्काल विधि पूर्वक दीक्षा दे दी। फिर तप-परायणा साध्वी सीता को सुप्रभा नामक गणिनी के हाथों में सौंप दिया।

नवम सर्ग समाप्त

दशम सर्ग

चन्दन जल के छींटे डालकर राम को होश में लाया गया। कुछ स्वस्थ होते ही राम बोल उठे, 'मनस्विनी सीता कहाँ है? हे भूचरगण, हे खेचरगण, यदि तुमलोग जीवित रहना चाहते हो तो मुझे बताओ मेरी सीता कहाँ है? हे वत्स लक्ष्मण, मुझे तुरन्त धनुष-बाण दो। मैं इतना दुःखी हो रहा हूँ और ये सब इतने स्वस्थ और उदासीन क्यों?'

ऐसा कहकर राम धनुष-बाण उठाने लगे। लक्ष्मण बोले, 'हे आर्य, आप यह क्या कर रहे हैं? ये तो सब आपके सेवक हैं। न्याय के लिए निन्दा के भय से आपने जिस प्रकार सीता का परित्याग किया था उसी प्रकार स्वार्थ के लिए, आत्महित के लिए सीता ने हम सब का परित्याग कर दिया है। आपकी प्रिय सीता ने आपके सम्मुख ही केशोत्पाटन कर जयभूषण मुनि के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली है। इन महर्षि को इस समय केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है। उनके ज्ञान प्राप्ति के उपलक्ष में केवल ज्ञान महोत्सव करना हमारा कर्तव्य है। हे प्रभो, महाव्रतधारिणी सीता भी वहीं है। वे अब निर्दोष शुद्ध सती मार्ग की भाँति मोक्ष मार्ग का निर्देश ले रही है।'

लक्ष्मण की बात सुनकर राम स्थिर हुए और बोले, 'प्रिय सीता ने केवली भगवन्त से दीक्षा ग्रहण कर ली है यह बहुत अच्छा हुआ।'

तदुपरान्त राम जयभूषण मुनि के पास गए और उन्हें वन्दन कर उनके सम्मुख बैठ गए। उनकी देशना सुनी। देशना की समाप्ति पर बोले, 'मैं आत्मा को नहीं जानता, अतः दया कर बताइए मैं भव्य हूँ या अभव्य?' केवली भगवान ने उत्तर दिया, 'हे राम, तुम केवल भव्य ही नहीं, तुम इस जीवन में मोक्ष भी प्राप्त करोगे।' राम ने पुनः पूछा, 'हे भगवन्, मोक्ष तो दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ही मिलता है' और दीक्षा तो सब कुछ परित्याग करने के पश्चात् ही ली जाती है। किन्तु भाई लक्ष्मण का परित्याग मेरे लिए सम्भव नहीं है। अतः मोक्ष किस प्रकार पाऊँगा?' केवली बोले, 'अभी तक तुम्हारा समय बलदेव का वैभव भोग करने का था। उस भोग के पूर्ण होने पर तुम निःसंग वैरागी होकर दीक्षा लोगे और मोक्ष जाओगे, शिव सुख प्राप्त करोगे।'

विभीषण ने मुनि को नमस्कार कर कहा, 'हे प्रभु, रावण ने पूर्व जन्म के किन कर्मों के कारण सीता का हरण किया? किस कर्म के कारण लक्ष्मण ने उसका वध किया? और सुग्रीव, भामण्डल, लवण, अंकुश और मैं किस कर्म के कारण राम पर इतने स्नेहशील हैं?'

मुनि बोले, 'दक्षिण भरतार्द्ध में क्षेमपुर नामक एक नगर था। उस नगर में नयदत्त नामक एक वणिक रहता था। उसकी पत्नी सुनन्दा के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम था धनदत्त, दूसरे का नाम था वसुदत्त। उन दोनों की याज्ञवल्क्य नामक एक ब्राह्मण से मित्रता हो गयी। उसी नगर में सागरदत्त नामक एक अन्य वणिक रहता था। उसकी दो सन्तानें थीं—गुणधर नामक एक पुत्र, और गुणवती नामक एक कन्या थी। सागरदत्त ने नयदत्त के गुणवान पुत्र धनदत्त के साथ अपनी कन्या का विवाह करने का वचन दिया। कन्या की माँ रत्नप्रभा ने धन के लोभ में श्रीकान्त नामक एक अन्य धनाढ्य व्यक्ति के साथ गुप्तरीति से कन्या का सम्बन्ध तय कर लिया। याज्ञवल्क्य को जब यह ज्ञात हुआ तो वह अपने मित्र के इस प्रकार के वचन सहन करने में असमर्थ होकर उसे जाकर सब कुछ बता दिया। यह सुनकर वसुदत्त श्रीकान्त को मारने के लिए दौड़ा। दोनों ही एक दूसरे की तलवार से घायल होकर मृत्यु को प्राप्त हो गए। मृत्यु के पश्चात दोनों ने ही विंध्य अटवी में मृग रूप में जन्म ग्रहण किया। गुणवती भी कुमारी अवस्था में ही मृत्यु प्राप्त कर विंध्य अटवी में ही मृगी रूप में उत्पन्न हुयी। वहाँ भी उन दोनों ने इस मृगी के लिए लड़कर प्राण गँवाए। इस भाँति परस्पर वैर के कारण दोनों भव अटवी में भटकने लगे।

'धनदत्त अपने भाई की मृत्यु से अत्यन्त दुखी होकर उद्भ्रान्त-सा इधर-उधर घूमने लगा। एक रात क्षुधातुर धनदत्त ने कुछ साधुओं को देखकर खाने को माँगा। प्रत्युत्तर में एक साधु ने कहा, 'हे भाई, मुनिगण दिन में अन्न संग्रह कर नहीं रखते तो रात में उनके पास अन्न कहाँ से आएगा? हे भद्र, तुमलोगों को भी रात को खाना उचित नहीं है। कारण ऐसे अंधकार में अन्नादि में रहा जीव दिखलायी नहीं पड़ता।'

'मुनि के उपदेश उसे हृदय को अमृत से सींचने की भाँति सुखकारी लगे। वह श्रावक बन गया। आयु पूर्ण होने पर मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म देवलोक में देव रूप में जन्म ग्रहण किया। वहाँ से च्युत होकर वह महापुर नगर के मेरु-श्रेष्ठी के घर उसकी पत्नी धारणी के गर्भ से पद्मरुचि नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। वह पूर्ण श्रावक बन गया। एक बार पद्मरुचि घोड़े पर चढ़कर गोकुल जा रहा था। दैव योग से उसने राह में एक मरणासन्न वृद्ध बैल को पड़े हुए देखा। दयालु पद्मरुचि अश्व से उतरकर उसके पास गया और उसे नमस्कार मंत्र सुनाया। नमस्कार मंत्र के प्रभाव से वह बैल मरकर उस नगर के राजा छत्रच्छाया के घर श्रीदत्ता रानी के गर्भ से पुत्र रूप में पैदा

हुआ। उसका नाम रखा गया वृषभध्वज। एकबार वृषभध्वज घूमते हुए उसी वृद्ध बैल के मृत्यु स्थान पर पहुँच गया। पूर्वजन्म का मृत्यु स्थान देखकर उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। अतः उसने वहाँ एक चैत्य का निर्माण करवाया। चैत्य की एक ओर की दीवाल पर उसने एक चित्र अंकित करवाया जिसका विषय था एक वृद्ध मरणासन्न बैल को एक व्यक्ति नमस्कार मंत्र सुना रहा है। और उसके पास जीन कसा हुआ अश्व खड़ा है। तदुपरान्त उसने चैत्य के रक्षक को यह निर्देश दिया 'जो व्यक्ति इस चित्र के गूढ़ अर्थ को समझ सके उसकी खबर मुझे तुरन्त देना ?' ऐसा कहकर कुमार अपने प्रासाद को लौट गया।

'एक बार पद्मरुचि श्रेष्ठी वन्दना करने उसमें आए और अर्हत् वन्दना कर दीवाल पर अंकित चित्र को देखा। वह देखकर विस्मित बने वे बोल उठे, 'इस चित्र में अंकित विषय तो मेरे जीवन का है।' रक्षकों ने तत्क्षण जाकर राजकुमार वृषभध्वज को यह सूचना दी। राजकुमार तुरन्त मन्दिर आए और श्रेष्ठी से पूछा—'आप चित्र में अंकित विषय के सम्बन्ध में क्या जानते हैं ?' श्रेष्ठी बोले, 'मुझे मरणासन्न बैल को नमस्कार मंत्र सुनाते देखकर किसी ने यह चित्र अंकित कर दिया है।' सुनकर श्रेष्ठी को राजकुमार ने नमस्कार किया और कहा, 'हे भद्र, वह वृद्ध बैल मैं ही हूँ। नमस्कार मंत्र के प्रभाव से अब मैं राजकुमार बना हूँ। आप यदि मुझे उस समय नमस्कार मंत्र नहीं सुनाते तो मैं मरकर तीर्यंच योनि या अन्य किसी नीच योनि में उत्पन्न होता। इसलिए आप मेरे प्रभु, गुरु, देव सब कुछ हैं। अतः आपका दिया हुआ यह राज्य ग्रहण करिए।' तत्पश्चात् वृषभध्वज और पद्मरुचि एक साथ रहने लगे। वृषभध्वज पूर्णतः श्रावक धर्म का पालन करने लगा। वे दोनों बहुत दिनों तक श्रावक धर्म का पालन कर मृत्यु के पश्चात् ईशान देवलोक में परम महर्द्धिक देव रूप में उत्पन्न हुए। पद्मरुचि वहाँ से च्युत होकर मेरु पर्वत का जो वैताढ्य गिरि हैं वहाँ के नन्दावर्त नामक नगर में नन्दीश्वर नामक राजा के घर में कनकाभा नामक रानी के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम नयनानन्द रखा गया। वहाँ राज्य सुख भोगकर उसने दीक्षा ली और मृत्यु के पश्चात् महेन्द्र नामक चतुर्थ देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्यवकर पूर्व विदेह की क्षेमपुरी के राजा विपुलवाहन की रानी पद्मावती के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम श्रीचन्द रखा गया। वहाँ भी राज्य भोग के पश्चात् समाधिगुप्त मुनि से दीक्षा ग्रहण कर तपस्या करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ। मृत्यु के पश्चात् वह ब्रह्म नामक पंचम

देवलोक में इन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर वही अब महा-बलवान रामभद्र रूप में तुम हुए हो। वृषभध्वज का जीव अनुक्रम से सुग्रीव हुआ है।

'श्रीकान्त का जीव भव भ्रमण कर मृणालकन्द नगर में शम्भुराजा की रानी हेमवती के गर्भ से वज्रकण्ठ नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। वसुदत्त भी भव भ्रमण करता हुआ शम्भुराज के पुरोहित विजय की पत्नी रत्नचूड़ा के गर्भ से श्रीभूति नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। गुणवती भव भ्रमण कर भवभूति की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुयी। उसका नाम रखा गया वेगवती। क्रमशः बड़ी होने पर उसने यौवन प्राप्त किया। एक दिन प्रतिमाधारी मुनि को वन्दना करने जाते हुए लोगों को देखकर वह हँसते हुए बोली, 'मैंने इन्हें कुछ समय पहले स्त्री-संभोग करते हुए देखा है। अभी उस स्त्री को इन्होंने कहीं छुपा रखा है। अतः तुमलोग इन्हें क्यों वन्दना कर रहे हो?' वेगवती के कथन से लोगों का मनभाव बदल गया। उन्हें कलंकी कहकर लोग उन पर उपसर्ग करने लगे। तब मुनि ने यह अभिग्रह लिया जब तक उनका कलंक दूर नहीं होगा वे कायोत्सर्ग में रहेंगे। मुनि पर लगाए गए मिथ्या दोषारोपण से शासन देव कुपित हो उठे। उन्होंने वेगवती के मुँह में रोग उत्पन्न कर दिया। उसके पिता ने जब उसका कुकृत्य सुना तो उसे तिरस्कृत कर दिया। पिता के रोष और रोग के भय से वेगवती मुनि के निकट गयी और समस्त लोगों के सम्मुख उच्च स्वर से बोली, 'हे प्रभु, आप सर्वथा निर्दोष हैं। मैंने आप पर मिथ्या दोषारोपण किया था। अतः हे क्षमा-निधि, आप मेरा अपराध क्षमा करें।' उसकी यह बात सुनकर लोग पुनः मुनि को वन्दन करने लगे। वेगवती भी उसी समय से श्रद्धालु श्राविका बन गयी। उसका रूप देखकर शम्भु राजा ने उससे विवाह करना चाहा। श्रीभूति बोला, 'मैं मिथ्या दृष्टि को अपनी कन्या नहीं दूँगा।' यह सुनकर शम्भु राजा ने श्रीभूति को मार डाला और बलपूर्वक वेगवती से सम्भोग किया। उसी समय वेगवती ने उसे श्राप दिया कि जन्मान्तर में मैं तेरी मृत्यु का कारण बनूँगी।

'शम्भु राजा ने वेगवती का परित्याग कर दिया। तब उसने हरिकान्ता नामक साध्वी के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। मृत्यु के पश्चात् वह ब्रह्म देवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ से च्युत होकर जनक राजा की कन्या जानकी बनी। पूर्व जन्म में उसने सुदर्शन मुनि पर झूठा कलंक लगाया था इसीलिए इस जन्म में लोगों ने उस पर मिथ्या कलंक लगाया।

'शम्भु राजा का जीव भव भ्रमण करता हुआ कुशध्वज नामक ब्राह्मण की पत्नी सावित्री के गर्भ से प्रभास नामक पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया। कुछ दिनों पश्चात् उसने विजयसेन मुनि से दीक्षा ग्रहण की। दुर्द्धर तप कर वह अनेक प्रकार के परिषहों को सहन करने लगा। प्रभास मुनि ने एक बार विद्याधर राजा कनकप्रभ को इन्द्र जैसी समृद्धि के साथ सम्मेत शिखर की यात्रा करते हुए देखा। मुनि ने उसी समय निदान कर लिया कि मैं अपनी तपस्या के फलस्वरूप पर जन्म में विद्याधर-सा समृद्धि सम्पन्न बनूँ। मृत्यु के पश्चात् वे तृतीय देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्युत होने पर वे ही हे विभीषण, तुम्हारे अग्रज रावण बने। कनकप्रभ की सम्पत्ति देखकर जो निदान किया था उसी के फलस्वरूप वे समस्त खेचरों के अधिपति बने।

'धनदत्त और वसुदत्त के मित्र याज्ञवल्क्य ब्राह्मण का जीव भव भ्रमण कर तुम विभीषण हुए हो। शम्भु को मारने के पश्चात् श्रीभूति का जीव स्वर्ग जाता है। वहाँ से च्युत होकर सुप्रतिष्ठपुर में पुनर्वसु नामक विद्याधर बनता है। एक बार कामातुर होकर उसने पुण्डरीक विजय से त्रिभुवनानन्द नामक चक्रवर्ती की कन्या अनंगसुन्दरी का हरण कर लिया। चक्रवर्ती ने विद्याधरों को उसके पीछे भेजा। युद्ध में पुनर्वसु विव्रत हो उठा और अनंगसुन्दरी उसके विमान से एक लता गृह में जा पड़ी। पुनर्वसु ने उसे पाने का निदान कर दीक्षा ग्रहण कर ली। वहाँ से मृत्यु प्राप्त कर वह देवलोक में जाता है। वहाँ से च्युत होने पर उसका जीव लक्ष्मण रूप में उत्पन्न हुआ है।

'अनंगसुन्दरी वन में रहकर उग्र तपस्या करती है। अन्ततः अनशन ले लेती है। अनशन काल में एक अजगर उसे निगल जाता है। समाधि मरण प्राप्त कर वह देवलोक में देवी बनती है। वहाँ से च्यव कर वही विशल्या नामक लक्ष्मण की पत्नी बनती है।

'गुणधर नामक गुणवती का भाई भव भ्रमण कर कुण्डलमण्डित नामक राजपुत्र बनता है। उस जन्म में वह चिरकाल तक श्रावक धर्म पालन कर मृत्यु के पश्चात् सीता का सहोदर भाई भामण्डल बनता है।

'काकन्दी नामक नगरी में वामदेव ब्राह्मण की पत्नी श्यामला के वसुनन्द और सुनन्द नामक दो पुत्र हुए। एक दिन वे दोनों अपने घर में बैठे हुए थे उसी समय एक मास का उपवास किए एक मुनि वहाँ आए। उन्होंने भक्ति-भाव से उन्हें आहार दिया। इस दान के प्रभाव से मृत्यु के पश्चात् वे उत्तर कुरु में युगलिक रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ से च्युत होकर काकन्दी नगरी में के

वामदेव राजा की रानी सुदर्शना के गर्भ से प्रियंकर व शुभंकर नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। दीर्घ काल तक वहाँ राज्य करने के पश्चात् उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और मृत्यु के पश्चात् ग्रैवेयक देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यव कर वे लवण और अंकुश बने हैं। इनकी पूर्व जन्म की माँ सुदर्शना दीर्घ काल तक भव भ्रमण कर सिद्धार्थ बना है जिसने इन्हें शिक्षा-दान दिया है।'

इस प्रकार जयभूषण मुनि से पूर्वजन्म की कथा सुनकर अनेकों के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। राम के सेनापति कृतान्त ने तत्काल दीक्षा ग्रहण कर ली। राम-लक्ष्मण जय मुनि को वन्दना कर सीता के पास गये। सीता को देखकर राम चिन्तित होकर सोचने लगे, शिरीष कुसुम-सी कोमल सीता शीत और ग्रीष्म का दुःख कैसे सहन करेगी? यह कोमलांगी समस्त भारों से अधिक और हृदय से अधिक दुर्वह, संयम भार को किस प्रकार सहन करेगी? फिर सोचने लगे जिसके सतीत्व को रावण भी भंग नहीं कर सका वह सती संयम में भी अपनी प्रतिष्ठा का निर्वाह अवश्य करेगी। तदुपरान्त राम ने सीता को वन्दना की, शुद्ध हृदयी लक्ष्मण एवं अन्यान्य राजाओं ने भी उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् राम स्व-परिजनों सहित अयोध्या लौट गए।

सीता और कृतान्तवदन ने उग्र तपस्या करना प्रारम्भ किया। कृतान्तवदन तपस्या करते हुए मृत्यु प्राप्त कर ब्रह्म देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए। सीता ने साठ वर्ष तक विभिन्न प्रकार की तपस्याएँ कर तेंतीस दिन और रात्रि अनशन में रहकर मृत्यु प्राप्त की। मृत्यु के पश्चात् अच्युतेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुयी। उनका आयुष्य बाईस सागरोपम का था।

[क्रमशः

संकलन

|| शास्त्रों के पढ़ लेने मात्र से कुछ भी हाथ नहीं लगेगा ||

सारे संसार की नाना प्रकार की विद्याएँ और भाषाएँ सीख लेने पर भी जीवन का त्राण नहीं हो सकता। अगर तुम त्राण चाहते हो और निर्वाण पाने की अभिलाषा रखते हो तो उसके लिए तुम्हें आचरण करना पड़ेगा। कोई बीमार किसी वैद्य से एक नुस्खा लिखवा लाए, जिसमें उत्तम से उत्तम औषधियाँ लिखीं हों और उसे सुबह शाम पढ़ लिया करे, तो क्या उसकी बीमारी दूर हो जाएगी? नहीं, नुस्खा पढ़ लेने मात्र से बीमारी दूर नहीं हो सकती। कहीं ऐसा होता देखा जाए तो यह भी माना जा सकता है कि शास्त्रों के पाठ घोख लेने और उगल देने से पवित्रता प्राप्त हो जाएगी। मगर ऐसा होना कभी सम्भव नहीं है। एक साधक ने कहा है—

> कायेनेव पठिष्यामि वाक्-पाठेन तु किं भवेत्?
> चिकित्सा-पाठ मात्रेण न हि रोगः शमं व्रजेत् ||

जो भी शास्त्र मुझे पढ़ना है वह मैं जीवन से पढ़ूँगा, जबान से नहीं पढ़ूँगा। जबान से बोल लेने से क्या होने वाला है? आयुर्वेद की पुस्तकों को रट लेने से और चरक तथा सुश्रुत को घोख लेने मात्र से कोई नीरोग नहीं हो सकता। हजार वर्ष तक घोखा करो तो भी उससे मामूली बुखार और जरा-सा सिरदर्द भी दूर नहीं होगा, उलटा शरीर गलता जाएगा और सड़ता जाएगा।

तो यह बात हम भलीभाँति समझते हैं कि आयुर्वेद को कण्ठस्थ कर लेने मात्र से रोग दूर नहीं होता। यही बात संसार के धर्मशास्त्रों के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। जितने भी धर्मशास्त्र हैं, वे भी हमारी चिकित्सा करने के लिए हैं। आयुर्वेद से शरीर की चिकित्सा की विधि जानी जाती है और धर्मशास्त्र से मन और आत्मा की चिकित्सा होती है। हमारे भीतर पैठी हुई वासना ही मन और आत्मा की बीमारी है। किसी को क्रोध की, किसी को मान की, किसी को माया की, किसी को लोभ की बीमारी सता रही है। किसी भी धर्मशास्त्र को लीजिये उसमें इन बीमारियों की चिकित्सा का विधान है, परन्तु उन शास्त्रों को पढ़ लेने मात्र से कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। शास्त्रों की बातों को जीवन में उतारने से ही लाभ हो सकता है। हरिश्चन्द्र की कथा पढ़ लेने से सत्यवादी नहीं बना जा सकता किन्तु हरिश्चन्द्र ने जैसा आचरण किया था वही करेंगे तो सत्यवादी बन सकेंगे।

—उपाध्याय श्री अमर मुनि

जैन पत्र-पत्रिकाएं—कहाँ/क्या

जैन सिद्धान्त भास्कर || दिसम्बर १९९२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'भाषा और विचारों की सम्प्रेषणीयता : जैन अवधारणा' (डॉ० कलश जैन), 'चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज : संस्मरण और श्रद्धांजलि' (ब्र०पं०चन्दाबाई), 'सांस्कृतिक अनुसंधान में जैन सिद्धान्त भवन आरा का अवदान' (डॉ० ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'), 'श्वेताम्बराचार्य विजयधर्म सूरिजी का आरा प्रवास' (श्री सुबोध कुमार जैन), 'जैन धर्म में काल गणना' (गणेश प्रसाद जैन), 'जैन धर्म में भक्ति की अवधारणा' (डॉ० सुनीता जैन), 'महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे' (डॉ० शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी), 'एरण में तोरमान उल्लेख' (अभय प्रकाश जैन), 'सरस्वती भवन की प्राचीन जैन मूर्तियाँ' (डॉ० महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज'), 'आदि पुराण कालीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक विश्लेषण' (श्रद्धानन्द प्रसाद शर्मा), 'उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णित जीव की अवधारणा' (डॉ० महेन्द्रनाथ सिंह), 'वाराणसी का ऐतिहासिक भित्तिलेख' (डॉ० कस्तूरचन्द जैन 'सुमन'), 'Digambara Jain Prakrit Literature and Sauraseni' (Dr. Gokul Chandra Jain), 'Evolution Theory of Kundakunda' (Devendra Kumar Jain), 'Weights and Measures in Jain Canons : [a] Mass and Volumes' (N. L. Jain), 'Jains in Modern Society' (Dr. Jagdish Prasad Jain).

तीर्थंकर || जून १९९३

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'भारत बने महान्' (मुनि चन्द्रप्रभ सागर), 'और हम आँखें मूँदे बैठे हैं' (गणेश ललवानी)।

तुलसी प्रज्ञा || फरवरी १९९३

इस अंक में है 'वर्द्धमान ग्रंथागार, लाडनूं की प्रत और ऋग्वेद का ग्रंथाग्र परिमाण' (परमेश्वर सोलंकी), 'जिनागमों का संपादन' (जौहरीमल पारख), 'रत्नपाल चरित : एक साहित्यिक अनुशीलन' (डॉ० हरिशंकर पाण्डेय), 'जिनसेनकृत हरिवंश पुराण में प्राचीन राजतंत्र का स्वरूप' (डॉ० सोहन कृष्ण पुरोहित), 'तेरापंथ का संस्कृत साहित्य : उद्भव और विकास ४'

(मुनि गुलाबचंद 'निर्मोही'), 'न्याय-वैशेषिक, योग एवं जैन दर्शनों के संदर्भ में ईश्वर' (डॉ० कमला पंत), 'स्याद्वाद : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में' (समणी स्थितप्रज्ञा), 'Copper Hoard. An Published Find from Chithwari Chomu (Jaipur)' (Harphool Singh), 'Victory over Sex (A Technic of Spiritual Science)' (J. S. Javeri & Muni Mahendra Kumar), 'Raghavabhatta on Magadhi in the Abhijnana Sakuntalam' (Jagat Ram Bhattacharya), 'Mahavir Era of Jain Chronology' (Parameshwar Solanki), 'The Date of Mahavira' (Upendranath Roy), 'Date of Lord Mahavira Reconsiderd' (Dr. G. V. Tagare), 'The Date of Mahavira's Nirvana as Determined in Saka 1175' (S. B. Pathak).

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : Off. 21039
Res. 21174

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :
Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330

Vol. XVII No. 3 TITTHAYARA July 1993

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२